वह मन, जिसने अपना घर व्यवस्थित कर लिया है, एक मौन, शांत मन होता है। इस मौन का कोई कारण नहीं होता, अतएव इसका कोई अंत नहीं। अंत केवल उसी का संभव है जिसका कोई कारण रहा हो। तो यह मौन—जिसका कोई अंत नहीं है—नितांत आवश्यक है, क्योंकि इस मौन में विचार की तनिक भी हलचल नहीं होती। केवल इसी मौन में उसकी उपस्थिति है जो पावन है, जो अनाम है, जिसे विचार द्वारा मापा नहीं जा सकता। तथा जो है, वही सर्वाधिक पावन है। यही ध्यान है।

–जे. कृष्णमूर्ति
('कृष्णमूर्ति : 100 यिअर्ज़' से)

जे. कृष्णमूर्ति परिसंवाद

वर्ष : 7 अंक : 4
जून 2013

कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया, *वाराणसी की त्रैमासिक हिंदी पत्रिका*
सितंबर, दिसंबर, मार्च एवं जून में प्रकाशित

संपादन : विजय छाबड़ा
सहयोग : अरविंद शुक्ल

कृष्णमूर्ति साहित्य :

	पृष्ठ संख्या
विचार की गतिविधि के बिना देखना	4
द्विभाषी उद्धरण	बीच के पन्ने

मंथन और संवाद :

''स्मृति को जाने दें''	25
अहल्या दी! अलविदा और नमस्कार	28

वार्षिक शुल्क : रु. 100.00 दो वर्ष रु. 175.00
पांच वर्ष के लिए : रु. 400.00 आजीवन रु. 1000.00

अज्ञान का, अधूरेपन का, कमी का एहसास जब हमें होता है तो हम क्या करते हैं? न जानने की, न समझने की पीड़ा, हमें लगता है, ढेर सारी जानकारियां हासिल कर लेने पर दूर हो जाएगी। हमें विचार पर, और अधिक गहरे से विचार करने पर, और विस्तार से व्याख्या सुनने-पढ़ने पर काफी भरोसा रहता है, है न? हम-आप यदि अपने आप से पूछें कि वे सब प्रयास हमें कहां ले आए हैं तो भीतर से क्या जवाब आता है? हमारी दौड़, हमारे प्रयास, हमारे विचारों की ऊहापोह तो कुछ न कुछ हासिल करने के चक्कर में ही रहती है। या नहीं? आखिर क्या है जो हमें हासिल हुआ है या जिसे इस खंड-खंड होती, अनगिनत टुकड़ों में बँटी दुनिया में हासिल करने की जद्दोजहद में हम-आप लगे हैं?

''सरोकार 'जो है' उसकी खोजबीन से कभी नहीं रहा, बल्कि कुछ हासिल करने से रहा है; यह सरोकार वास्तव में 'जो है' को देखने से नहीं रहा है...।'' क्या इसीलिए हमारी ऊर्जा यांत्रिक रहती है? तो क्या कोई ऐसी ऊर्जा है जो एकदम भिन्न है, यांत्रिक नहीं है, यानी समय की गिरफ्त में नहीं है?

(इस अंक में वर्तनी को लेकर एक छोटा-सा प्रयोग किया गया है : अंग्रेजी/फ्रेंच आदि भाषाओं में एक ध्वनि है जो 'pleasure', 'measure' जैसे शब्दों में रहती है, जिसे हमने झ़ के माध्यम से व्यक्त करने की कोशिश की है; अभी प्रचलित 'ज'-प्लेजर, मेजर-मूल ध्वनि से कुछ अधिक दूर लगा।)

विचार की गतिविधि के बिना देखना

हम आज सुबह भय की जटिल समस्या के तमाम पहलुओं पर विचार करने जा रहे हैं। मानव मन इतने लंबे समय से, जाने कितनी सदियों से भय के साथ जीता आया है, उसके साथ कैसे भी निबाह कर या उससे पलायन कर, कभी उसे तर्कसंगत ठहराकर तो कभी भुला देने की कोशिश कर, या फिर जो भय नहीं है, निर्भयता है, उसके साथ पूरी तरह से तादात्म्य स्थापित कर—इन सभी तौर-तरीकों को आप-हम आज़मा चुके हैं। और हम पूछ रहे हैं कि क्या भय से पूरी तरह से मुक्त हुआ जा सकता है, मानसिक रूप से और उसके चलते शारीरिक तौर पर भी। हम इस पर विचार-विमर्श करने जा रहे हैं, इस विषय पर मिल-जुल कर बातचीत करने जा रहे हैं और यह खोजने जा रहे हैं कि क्या ऐसा संभव है भी।

पहले, ऊर्जा क्या है, ऊर्जा के प्रकार, ऊर्जा की गुणवत्ता, और इच्छा का प्रश्न—इस सब पर हमें विचार करना होगा; और इस पर भी कि क्या इस प्रश्न में गहरे जाने के लिए हमारे पास पर्याप्त ऊर्जा है। हम विचार की ऊर्जा को जानते हैं, इसके घर्षण, इसकी खटर-पटर को जानते हैं; तकनीकी दृष्टि से इसने संसार में अत्यंत अद्‌भुत वस्तुओं का निर्माण किया है। किंतु भय के प्रश्न के भीतर अगाध गहराई तक प्रवेश करने के लिए, मानसिक तौर पर हमारे अंदर वह गहन ऊर्जा, वह उत्साह, वह रुचि ही नहीं है, ऐसा प्रतीत होता है।

हमें विचार द्वारा खुद अपनी ऊर्जा उत्पन्न करने के प्रश्न को भी समझना होगा—विचारजनित ऊर्जा, अतएव खंडित, अपूर्ण ऊर्जा, ऐसी ऊर्जा जो घर्षण से, द्वंद्व से उत्पन्न होती है। हम बस उसे ही तो जानते हैं : विचार की ऊर्जा, वह ऊर्जा जो अंतर्विरोध से, द्वैत के टकराव से उत्पन्न होती है, जो संघर्ष की

ऊर्जा है। यह सब कुछ वास्तविकता के संसार में है। वास्तविकता से तात्पर्य उन वस्तुओं से हैं जिनके साथ हम प्रतिदिन रहते हैं, मानसिक एवं बौद्धिक, दोनों तरह से।

मैं आशा करता हूं कि हमारी बात एक-दूसरे तक पहुँच पा रही है। इस संप्रेषण में केवल शाब्दिक समझ ही अंतर्निहित नहीं है, बल्कि यह भी कि जो कहा जा रहा है वास्तव में उसमें भागीदार होना, अन्यथा सहसंवाद, कम्यूनियन नहीं हो पाएगा। केवल शाब्दिक संप्रेषण ही नहीं होता है बल्कि एक निःशब्द सहसंवाद भी होता है। किंतु उस निःशब्द सहसंवाद तक पहुंचने के लिए, हमें बहुत गहराई से समझना होगा कि क्या शाब्दिक स्तर पर एक दूसरे को अपनी बात का संप्रेषण संभव है, जिसका अर्थ है कि हम दोनों इन शब्दों के अर्थ को समझने में समान रूप से भागीदार हों, समान रुचि से, समान तीव्रता से, और एक से स्तर पर, ताकि हम कदम-दर-कदम आगे बढ़ सकें। इसके लिए ऊर्जा की आवश्यकता है। और वह ऊर्जा तभी अस्तित्व में आती है, जब हम विचार की ऊर्जा और उसकी ऊहापोह को समझते हों, जिसमें हम फँसे हुए हैं। यदि आप अपने भीतर खोजबीन करें तो आपको पता चलेगा कि जो हम जानते हैं या अनुभव करते हैं, वह उपलब्धि के लिए, इच्छा के लिए, अपने प्रयोजनों के लिए की गयी विचार की खटपट है—प्रयास, संघर्ष, प्रतिस्पर्द्धा। यह सब विचार की ऊर्जा में सम्मिलित है।

अब हम पूछ रहे हैं कि क्या कोई अन्य प्रकार की ऊर्जा भी है, जो यांत्रिक नहीं है, परंपरागत नहीं है, अंतर्विरोधी नहीं है और इसलिए उस तनाव से मुक्त है जो ऊर्जा को उत्पन्न करता है। यह पता लगाने के लिए कि क्या कोई ऐसी अन्य प्रकार की ऊर्जा है, जो कल्पित न हो, कोई ख्याली उड़ान न हो, अंधविश्वास पर टिकी न हो, हमें इच्छा के प्रश्न में जाना होगा।

इच्छा किसी वस्तु का अभाव है, है न? यह इच्छा का एक अंश हुआ। फिर, किसी चीज़ की लालसा होती है, चाहे वह सेक्स की लालसा हो या कोई मनोगत लालसा, या तथाकथित

आध्यात्मिक लालसा। और यह इच्छा किस प्रकार उत्पन्न होती है? इच्छा किसी वस्तु की कमी है, किसी वस्तु का अभाव है, कोई ऐसी चीज़ है जिसे आप 'मिस' करते हैं; फिर उसकी लालसा, या तो काल्पनिक, या वास्तविक, जैसे कि भूख। और समस्या यह है कि व्यक्ति में इच्छा पैदा कैसे होती है। क्योंकि भय का सीधा सामना करने के लिए हमें इच्छा को समझना होगा—इच्छा को नकारना नहीं, अपितु इच्छा क्या है इसमें अंतर्दृष्टि प्राप्त करना। हो सकता है इच्छा ही भय का मूल हो। सारे संसार में धार्मिक साधकों ने इच्छा को नकारा है, उन्होंने इच्छा का प्रतिरोध किया है, उन्होंने उस इच्छा का अपने देवताओं, अपने मुक्तिदाताओं, अपने यीशु या किन्हीं अन्य के साथ तादात्म्य कर लिया है, अपनी इच्छा को उनसे जोड़ लिया है; किंतु है वह फिर भी इच्छा ही। और इच्छा के प्रश्न में पूर्ण रूप से प्रवेश किये बगैर, इसमें अंतर्दृष्टि पाए बगैर, मन संभवतः भय से मुक्त नहीं हो सकता।

हमें एक भिन्न प्रकार की ऊर्जा की आवश्यकता है, विचार की यांत्रिक ऊर्जा की नहीं, क्योंकि वह हमारी किसी भी समस्या को हल नहीं कर पायी है; इसके विपरीत, उसने इन समस्याओं को कहीं अधिक जटिल, अधिक विशाल, समाधान की दृष्टि से असंभव बना दिया है। अतः हमें एक अलग प्रकार की ऊर्जा की खोज करनी है। क्या वह ऊर्जा विचार से संबंधित है या विचार से स्वतंत्र है, इस विषय पर छानबीन करने के लिए हमें इच्छा के प्रश्न की तह तक जाना होगा। क्या आप यह समझ रहे हैं?—किसी और की इच्छा नहीं, बल्कि आपकी अपनी इच्छा। अब इच्छा उत्पन्न कैसे होती है? यह देखा जा सकता है कि किसी वस्तु का प्रत्यक्षज्ञान होता है, फिर संवेदन होता है, फिर संपर्क होता है और फिर इच्छा उत्पन्न होती है। व्यक्ति देखता है कुछ ऐसा, जो खूबसूरत है, फिर संपर्क-स्पर्श होता है, आँखों द्वारा, शरीर द्वारा, इंद्रियों के माध्यम से, और फिर संवेदन महसूस होता है, और तब उस वस्तु की कमी का एहसास होता है। और उससे इच्छा उत्पन्न होती है। यह काफी स्पष्ट है।

इस मन को, पूरी की पूरी ऐंद्रिय संरचना को, यह कमी क्यों महसूस होती है? किसी चीज़ की कमी का, उसे चाहने का यह एहसास क्यों होता है? उम्मीद है, जो कहा जा रहा है उस पर आप यथेष्ट ध्यान दे रहे होंगे, क्योंकि यह आपका जीवन है। आप केवल शब्दों, विचारों, या फार्मूलों को नहीं सुन रहे हैं, बल्कि यथार्थ में जांच-पड़ताल की प्रक्रिया में सहभागी हो रहे हैं ताकि हम एक ही दिशा की ओर, एक ही रफ्तार से, उसी तीव्रता से व एक ही स्तर पर साथ-साथ चल सकें अन्यथा हम एक दूसरे से मिल नहीं पाएँगे। यह भी प्रेम का ही हिस्सा है। प्रेम वह संवाद-संप्रेषण है, जो एक दूसरे से, एक ही स्तर पर, एक ही समय, एक-सी प्रगाढ़ता के साथ होता है।

तो व्यक्ति को किसी वस्तु की कमी या आवश्यकता का बोध क्यों होता है? मुझे मालूम नहीं कि आप इस प्रश्न में गये हैं या नहीं? मनुष्य का मन, या मनुष्य सदैव किसी न किसी चीज़ के पीछे क्यों लगे रहते हैं? तकनीकी जानकारी प्राप्त करने, भाषाएँ आदि सीखने के अतिरिक्त, हमें क्यों सारा समय किसी चीज़ की आवश्यकता का, किसी चीज़ की कमी का बोध होता रहता है, क्यों हम सदैव किसी-न-किसी चीज़ का पीछा करते रहते हैं?—जो कि इच्छा की गति है, और जो समय के अंतर्गत, समय व मापन के रूप में विचार की गति भी है। इसमें यह सब कुछ आ जाता है।

हम पूछ रहे हैं, यह कमी का एहसास क्यों रहता है? पूर्ण आत्मनिर्भरता का एहसास क्यों नहीं रहता? किसी चीज़ को भरने या उसे ढकने के उद्देश्य से किसी चीज़ की यह ललक क्यों रहती है? क्या ऐसा इसलिए होता है कि हममें से अधिकांश में एक खालीपन, अकेलेपन, सूनेपन का एहसास मौजूद रहता है? दैहिक रूप से हमें भोजन, कपड़ा और शरणस्थल की आवश्यकता है, और यह आवश्यकता पूरी होनी ही चाहिए। किंतु यह पूरी नहीं हो पाती, क्योंकि राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, और राष्ट्रीय रूप से हम विभाजित हैं जो कि इस संसार के लिए अभिशाप है।

राष्ट्रीयता की यह भावना पूर्वी संसार में नहीं थी, इसका आविष्कार पाश्चात्य संसार ने किया है; अब तो पूर्वी संसार में भी यह विषाक्त भावना आ पहुँची है। और जब जनसमूहों के बीच, राष्ट्रीयताओं तथा विश्वासों, रूढ़ियों के बीच विभाजन होता है, तब सब लोगों के लिए सुरक्षा लगभग असंभव हो जाती है। तानाशाही का आततायी संसार यह मुहैया कराने का प्रयास कर रहा है—प्रत्येक को आहार—किंतु वह इसमें सफल नहीं हो पाएगा। यह सब हम जानते ही हैं, तो हम आगे बढ़ें। तो वह क्या है जिसकी हममें कमी है? ज्ञान की? अर्थात मनोवैज्ञानिक, वैज्ञानिक तथा अन्य दिशाओं में किये गये कार्य से अर्जित अनुभवों का संचय, और यह ज्ञान अतीत में है। ज्ञान, जानकारी अतीत है। क्या यही है वह, जो हम चाहते हैं? क्या यही हम 'मिस' कर रहे हैं? क्या इसीलिए हमें शिक्षित किया गया है कि तकनीकी संसार में निपुणतापूर्वक कार्य करने के लिए जितनी संभव हो सके उतनी जानकारी बटोर लो? अथवा हमें किसी कमी का, चाह का एहसास हुआ करता है, मानसिक रूप से, आंतरिक रूप से? जिसका अर्थ हुआ कि आप उस आंतरिक खालीपन को, कमी को, अनुभव से या अनुभव के ज़रिये भरने का प्रयास करेंगे जो कि संचित ज्ञान है। तो आप उस खालीपन को, उस शून्यता को, उस विशाल अकेलेपन के एहसास को उस चीज़ से भरने का प्रयास कर रहे हैं, जिसे विचार ने रचा है। अतः उस खालीपन को भरने की ललक से इच्छा का उदय होता है। आखिरकार, जब आप संबोधि, एन्लाइटन्मैंट, या जैसा कि हिंदू कहते हैं आत्मसाक्षात्कार की तलाश में हैं, तो वह इच्छा का एक रूप ही तो है। अज्ञान का यह एहसास, हम सोचते हैं, ढेर सारा ज्ञान अर्जित करने पर, संबोधि हासिल कर लेने पर मिट जाएगा, या दूर हो जाएगा, या उसका क्षरण हो जाएगा। हमारा सरोकार 'जो है' उसकी खोजबीन से कभी नहीं रहा, बल्कि कुछ हासिल करने से रहा है; यह सरोकार वास्तव में 'जो है' को देखने से नहीं रहा है, किंतु उसे आमंत्रित करने से रहा है जिसका हो सकता है अस्तित्व हो; या यह सरोकार कोई अधिक

महान अनुभव, अधिक श्रेष्ठ ज्ञान अर्जित करने की किसी उम्मीद से रहा है। अतः हम सदैव 'जो है' से कतराते रहे हैं, और इस 'जो है' को विचार ने ही उत्पन्न किया है। मेरा अकेलापन, सूनापन, व्यथा, पीड़ा, दुख, चिंता, भय असलियत में यही सब तो है 'जो है', और विचार इसका सामना करने में अक्षम है, और इससे दूर भागने की कोशिश करता रहता है।

अतः इच्छा को समझने में—अर्थात कुछ प्रत्यक्ष होना, उसे देखना, संपर्क, संवेदन, और फिर उस चीज़ की कमी का एहसास जो आपके पास नहीं है, इस तरह इच्छा, उस चीज़ को हासिल करने की ललक पैदा होती है—इसमें समय की पूरी की पूरी प्रक्रिया शामिल है। मेरे पास यह नहीं है, लेकिन यह मेरे पास होगा। और जब मेरे पास यह सचमुच होगा, तो मैं उसका मापन करूँगा उसके हिसाब से, जो आपके पास है। अतः इच्छा समय में मापन के रूप में विचार की गति है। कृपया मेरे साथ सहमत भर न हों। मेरी रुचि प्रोपेगंडा में, प्रचार में नहीं है। मुझे परवाह नहीं कि आप यहां आते हैं या नहीं, मुझे सुनते हैं या नहीं। किंतु चूँकि यह जीवन आपका है, चूँकि यह अपरिहार्य रूप से महत्त्वपूर्ण है कि हम बेहद गंभीर हों—संसार खंड-खंड हो रहा है—आपको इच्छा के, ऊर्जा के इस प्रश्न को समझना होगा, और एक भिन्न प्रकार की अयांत्रिक ऊर्जा के विषय में खोजबीन करनी होगी। और इस तक पहुंचने के लिए आपको यह समझना होगा कि भय क्या है। मतलब, क्या इच्छा भय उत्पन्न करती है? हम सब मिल-जुल कर भय के इस प्रश्न की छानबीन करने जा रहे हैं : भय क्या है? आप शायद कहें, ''ऊर्जा और इच्छा के बारे में भूल जाइए, और बस मेरे भय से छुटकारा दिलाने में मेरी सहायता कर दीजिए!'' वह तो बहुत ही मूढ़ता की बात होगी, क्योंकि ये सारी चीज़ें परस्पर संबंधित हैं। आप इनमें से सिर्फ एक को लेकर इस विषय में प्रवेश नहीं कर सकते। आपको पूरी-की-पूरी पोटली ही लेनी होगी।

तो भय क्या है, यह कैसे प्रकट होता है? क्या भय एक स्तर पर होता है और दूसरे पर नहीं? क्या भय चेतन स्तर पर होता

है या अचेतन स्तर पर? या, क्या कोई ऐसा भय होता है जिसे हम संपूर्ण भय कहें? अब, भय कैसे उदित होता है? यह मनुष्य के अंदर मौजूद क्यों है? और मनुष्य प्राणी पीढ़ी-दर-पीढ़ी इसे बरदाश्त करते आये हैं, इसके साथ रहते आये हैं। भय कर्म को विकृत कर देता है, यह बोधयुक्त विचारणा को, वस्तुनिष्ठ कार्यकुशल विचारणा को—जो कि आवश्यक है—विकृत करता है; तर्कसंगत, विवेकपूर्ण, स्वस्थ विचार तो ज़रूरी है। भय हमारे जीवन को अंधकारमय बना देता है। मैं नहीं जानता कि आपने कभी इस पर गौर किया है कि नहीं? यदि ज़रा भी भय हो तो हमारी समस्त इंद्रियां अपने आप में सिमटने लगती हैं। और हममें से अधिकांश लोग, चाहे जो संबंध हमारे हों, उस खास किस्म के भय की छाया में ही जिया करते हैं।

हमारा प्रश्न यह है कि क्या कभी यह मन और हमारा समस्त अस्तित्व, भय से पूर्ण रूप से मुक्त हो सकता है? शिक्षा ने, समाज ने, सरकारों ने, धर्मों ने इस भय को प्रोत्साहित किया है; धर्म तो भय पर ही आधारित हैं। और मान्यता, अथॉरिटी की उपासना के ज़रिये भी भय पनपता-बढ़ता है—वह चाहे किसी पुस्तक की मान्यता हो, पुरोहित की या उन लोगों की जो जानकार हैं। हमें खूब अच्छे से भय में पोषित किया जाता है। और हम पूछ रहे हैं कि क्या इससे पूर्ण रूप से मुक्त होना संभव है भी? तो हमें पता लगाना होगा कि भय क्या है? क्या यह किसी चीज़ का अभाव है?—जो कि इच्छा है, ललक है। क्या यह आने वाले कल की अनिश्चितता है? या बीते हुए कल की पीड़ा है? क्या यह आपके और मेरे बीच वह विभाजन है, जिसमें कोई संबंध है ही नहीं? क्या यही वह केंद्र है जिसे विचार ने 'मैं' के रूप में उत्पन्न किया है—'मैं' जो आकृति है, नाम है, लक्षण है—और क्या यह उस 'मैं' को खो देने का भय है? क्या यह भय के कारणों में से एक है? अथवा फिर यह अतीत की स्मृति है, कोई सुखद, सुहावनी स्मृति और उसके खो जाने का भय, या शारीरिक व मानसिक रूप से दुख उठाने का भय। क्या कोई एक ऐसा केंद्र

है जिससे समस्त भय उपजते हैं?—एक वृक्ष की तरह, जिसकी यद्यपि कई शाखाएं होती हैं, किंतु उसका एक ठोस तना होता है, जड़ें होती हैं, अतः सिर्फ उसकी शाखाओं की काट-छांट करते रहना व्यर्थ है। तो हमें भय की जड़ तक जाना होगा; क्योंकि यदि आप भय से पूर्णतया मुक्त हो सकें तो फिर स्वर्ग आपके संग-साथ है।

भय का मूल क्या है? क्या यह समय है? देखिए, हम खोजबीन कर रहे हैं, पूछताछ कर रहे हैं, हम कोई थ्योरी नहीं बना रहे, किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच रहे, क्योंकि निष्कर्ष निकालने के लिए कुछ है ही नहीं। जिस क्षण आप भय का मूल कारण देख लेते हैं, वस्तुतः, अपनी आँखों से, अपनी भावनाओं से, अपने हृदय से, अपने मन से—जब सचमुच आप इसे देख पाते हैं—तब आप इससे निपट सकते हैं; बशर्ते आप गंभीर हों। हम पूछ रहे हैं : क्या इसका कारण समय है? समय घड़ी के अनुसार, या कल, आज और कल के रूप में केवल कालानुक्रमिक समय नहीं है, अपितु मानसिक समय भी है, जो बीते हुए कल की यादें, उस कल के मज़े, और उसकी पीड़ा, चिंता और संताप है। हम पूछ रहे हैं कि क्या भय का मूल कारण समय है? आशाओं पर खरा उतरने के लिए समय, कुछ होने-हवाने के लिए समय, उपलब्धि के लिए समय, ईश्वर के साक्षात्कार या इसे जो कुछ भी आप कहना चाहें उसके लिए समय। मानसिक रूप से समय क्या है? क्या ऐसा कुछ है भी—कृपया ध्यान से सुनें—जिसे हम मानसिक समय कहें? या मानसिक समय का आविष्कार हमीं ने कर लिया है? मानसिक रूप से क्या कोई कल है? यदि कोई कहे कि मानसिक रूप से कल के तौर पर कोई समय है ही नहीं, तो आपको काफी गहरा झटका लगेगा, नहीं? क्योंकि आप कहते हैं, ''कल मैं सुखी हो जाऊँगा; कल मुझे उपलब्धि होगी; कल मैं किसी बड़े कारोबार का प्रबंध-अधिकारी बन जाऊँगा; कल मुझे संबोधि उपलब्ध हो जाएगी; कल गुरु जी किसी अवस्था का आश्वासन देंगे और मुझे उसकी प्राप्ति हो जाएगी।'' हमारे लिए कल अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। और क्या मानसिक रूप से

कोई कल है? हमने इसे स्वीकार कर लिया है : यह सब हमारी परंपरागत शिक्षा का अंग है कि आने वाले कल का अस्तित्व है। और जब आप मानसिक स्तर पर देखते हैं, अपने भीतर खोजबीन करते हैं, तो क्या कोई आने वाला कल आपके ज़हन में होता है? अथवा विचार ने, स्वयं में विखंडित होने के कारण इस कल का प्रक्षेपण कर लिया है? आइए, इसे ठीक से समझते हैं, इस बात को समझना बहुत महत्त्वपूर्ण है।

व्यक्ति शारीरिक दुख से गुज़रता है, जीवन में भरपूर पीड़ा है। और उस पीड़ा की स्मृति अंकित हो जाती है, एक अनुभव के रूप में, जिसे मस्तिष्क अपने में समा लेता है और इस प्रकार उस पीड़ा की स्मृति बनी रहती है। और विचार कहता है, ''मैं आशा करता हूं कि ऐसी पीड़ा मुझे दुबारा कभी नहीं होगी'': यही कल है। कल खूब मज़ा रहा, सेक्स का या और किसी भी प्रकार का मज़ा, और विचार कहता है, ''कल भी वही मज़ा मुझे फिर से मिलना चाहिए''। आप किसी ज़बर्दस्त अनुभव से गुज़रे—कम से कम आप तो सोचते ही हैं कि वह ज़बर्दस्त अनुभव था—और वह फिर स्मृति बन जाता है; और यह भान होने पर भी कि वह एक स्मृति ही है, आप कल फिर उसके पीछे लग जाएंगे। तो विचार समय के अंतर्गत एक गतिविधि है। क्या भय की जड़ समय है?—समय, आपसे तुलना के रूप में, 'मैं' जो आपसे अधिक महत्त्वपूर्ण है, 'मैं' जो कुछ उपलब्ध करने जा रहा है, कुछ बनने जा रहा है, किसी चीज़ से छुटकारा पाने जा रहा है।

अतः विचार समय के रूप में, विचार कुछ होने-हवाने के रूप में, भय का मूल है, उसकी जड़ है। हम कह चुके हैं कि समय किसी भाषा को सीखने के लिए आवश्यक है, किसी तकनीक को सीखने के लिए भी आवश्यक है। और हम सोचते हैं कि इसी प्रक्रिया को हम अपने मानसिक अस्तित्व पर भी लागू कर सकते हैं। किसी भाषा को सीखने के लिए मुझे कई सप्ताह चाहिएं, और मैं कहता हूं कि इसी प्रकार अपने बारे में सीखने के लिए, यह सीखने के लिए कि मैं कौन हूं, मुझे क्या प्राप्त

करना है, मुझे समय चाहिए। हम इस सारी प्रक्रिया पर सवाल उठा रहे हैं। क्या मानसिक स्तर पर वस्तुतः समय होता है, या फिर यह विचार का आविष्कार है और इस वजह से भय उत्पन्न होता है? यह हमारी समस्या है, और हमने चेतना को जान-बूझकर चेतन और प्रच्छन्न में विभाजित कर दिया है। यह भी विचार द्वारा किया गया विभाजन है। और हम कहते हैं, ''मैं अपने चेतन डरों से तो छुटकारा पा सकता हूं किंतु अचेतन डरों से, जिनकी जड़ें अवचेतन की गहराई में हैं, मुक्त होना लगभग असंभव है।'' हम कहने लगते हैं कि अचेतन डरों से मुक्त होना कहीं अधिक कठिन है जो प्रजातीय भय हैं, पारिवारिक भय हैं, कबीलाई भय हैं, वे भय हैं जिनकी जड़ें गहराई तक गयी हुई हैं, जो नैसर्गिक भय हैं। पहले तो हमने चेतना को दो स्तरों में विभाजित कर दिया, और फिर हम पूछने लगे : मनुष्य अचेतन में प्रवेश कैसे कर पाएगा? पहले हम इसे विभाजित कर लेते हैं, और फिर यह प्रश्न पूछा करते हैं।

ऐसा कहा जाता है कि सपनों के माध्यम से कई प्रच्छन्न, छिपे हुए डरों का ध्यानपूर्वक विश्लेषण करने के बाद हम अचेतन में जा सकते हैं। यह फैशन हो गया है। हम कभी भी विश्लेषण की पूरी प्रक्रिया को नहीं देखते-परखते, चाहे वह आत्मविश्लेषण के रूप में हो, या पेशेवर हो। विश्लेषण में निहित हैं विश्लेषक यानी विश्लेषण करने वाला, और विश्लेषित यानी जिसका विश्लेषण किया जा रहा है। तो विश्लेषक कौन है? क्या वह विश्लेषित से भिन्न है, या फिर विश्लेषक ही विश्लेषित है। और इसलिए विश्लेषण करना नितांत निरर्थक है। पता नहीं आप यह देख पा रहे हैं या नहीं? यदि विश्लेषक ही विश्लेषित है, तो केवल अवलोकन होता है, विश्लेषण नहीं। किंतु विश्लेषक विश्लेषित से भिन्न है—ऐसा आप सब लोग स्वीकार करते हैं, सारे पेशेवर यह स्वीकार करते हैं, वे सब लोग इसे स्वीकार करते हैं जो अपने आप को सुधारने का प्रयास कर रहे हैं—भगवान बचाए!—वे सब यह स्वीकार करते हैं कि विश्लेषित और विश्लेषक के बीच

भेद होता है। किन्तु विश्लेषक विचार का ही एक खंड है जिसने उस वस्तु को रच लिया है, जिसका वह विश्लेषण करना चाहता है। पता नहीं आपको यह स्पष्ट हुआ कि नहीं? तो विश्लेषण में विभाजन अंतर्निहित है और उस विभाजन में समय निहित है। और यह विश्लेषण आपको मृत्युपर्यंत करते रहना पड़ेगा।

तो जब विश्लेषण पूर्ण रूप से मिथ्या है—मैं 'मिथ्या' शब्द का प्रयोग गलत के भाव में कर रहा हूं, अर्थात निरर्थक—तब आपका वास्ता केवल अवलोकन से, देखने से ही होता है। अवलोकन करना!—हमें इसे समझना होगा कि अवलोकन क्या है। क्या आप यह सब समझ रहे हैं? हमने इससे शुरूआत की थी कि क्या कोई भिन्न प्रकार की ऊर्जा है। मुझे खेद है कि हमें थोड़ा पीछे लौटना होगा ताकि यह आपके मन में बस जाए—आपकी स्मृति में नहीं, जो कि एक पुस्तक पढ़कर उसे अपने समक्ष दोहरा लेने की तरह है, जिसका कुछ मतलब नहीं है। अतः हमारा सरोकार ऊर्जा से है, यानी हम ऊर्जा के प्रश्न की पड़ताल कर रहे हैं। हम विचार की ऊर्जा से परिचित हैं जो कि यांत्रिक है, द्वंद्व की, रगड़ खाते चले जाने की प्रक्रिया है, क्योंकि विचार की प्रकृति ही विखंडित होना है, विचार कभी समग्र नहीं होता। और हमने पूछा है कि क्या कोई पूर्णतया भिन्न प्रकार की ऊर्जा है, और इसी की हम तहकीकात कर रहे हैं। और इसकी जांच-पड़ताल करते हुए, हम इच्छा की समस्त गतिविधि को देखते हैं। इच्छा वह अवस्था है जिसमें किसी चीज़ की कमी महसूस होती है, उसे हासिल करने की ललक होती है। और वह इच्छा विचार की ही गतिविधि है, समय व मापन के रूप में : ''मुझे यह हासिल हो गया, अब मुझे इससे और अधिक कुछ हासिल होना चाहिए''। और भय को समझने के संदर्भ में हमने यह कहा कि हो सकता है समय गतिविधि के रूप में भय का मूल हो। यदि आप इसकी गहराई में जाएंगे तो आप देख लेंगे कि यही भय का मूल है, और यह यथार्थ तथ्य है। तो, क्या मन के लिए यह संभव है कि वह भय से पूर्णतया मुक्त हो सके? क्योंकि मस्तिष्क, जिसने ज्ञान का संचय कर रखा है, तभी निपुणतापूर्वक

कार्य कर सकता है जब वह पूर्ण रूप से सुरक्षित हो—किंतु वह सुरक्षा तो किसी न्यूरोटिक, स्वचालित क्रियाकलाप में भी हो सकती है, किसी आस्था में हो सकती है, इस विश्वास में हो सकती है कि आप एक महान राष्ट्र हैं; और साफ है कि सारी आस्थाएं न्यूरोटिक, स्वप्रक्षिप्त होती हैं, क्योंकि वे वास्तविक नहीं होतीं। और मस्तिष्क तभी प्रभावी ढंग से, स्वस्थ तरीके से, तर्कसंगत ढंग से कार्य कर सकता है, जब यह अपने आप को पूर्ण रूप से सुरक्षित महसूस करे, और भय उसे यह सुरक्षा नहीं देता। इस भय से मुक्त होने के लिए, हमने पूछा था, क्या विश्लेषण आवश्यक है? और हम देख पाते हैं कि विश्लेषण भय की समस्या का समाधान नहीं करता। अतः जब आपको विश्लेषण की प्रक्रिया के संदर्भ में अंतर्दृष्टि प्राप्त हो जाती है, आप विश्लेषण करना छोड़ देते हैं। और फिर रह जाता है सिर्फ अवलोकन का प्रश्न, देखने का प्रश्न। यदि आप विश्लेषण नहीं करते हैं, तब आपको करना क्या है? तब आप केवल देख सकते हैं। और यह पता लगाना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि देखा कैसे जाता है।

देखने से अभिप्राय क्या है? क्या अभिप्राय है इच्छा के इस प्रश्न को इस तरह देखने का कि इच्छा समय और मापन के अंतर्गत एक गतिविधि है? आप इसे कैसे देखते हैं? क्या आप इसे एक विचार के रूप में देखते हैं, एक सूत्र, एक फॉर्मूले की तरह, क्योंकि आपने वक्ता को इसके बारे में बोलते हुए सुना है? अतः जो आप सुनते हैं उसका आप विचार के रूप में एक अमूर्तीकरण कर लेते हैं और फिर उस विचार का अनुसरण करते हैं—जो अभी भी, भय से मुँह मोड़ना ही तो हुआ। अतः जब आप अवलोकन करते हैं, तो यह पता लगाना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि आप अवलोकन कैसे करते हैं।

क्या आप अपने भय का बिना उससे पलायन किए, बिना उसका दमन किए, बिना उसे तर्कसंगत ठहराए, या बिना उसे कोई नाम दिए अवलोकन कर सकते हैं? अर्थात क्या आप अपने

The story of all mankind is me

The mind is constantly occupied, isn't it? Now, in that occupation you cannot listen; you cannot see clearly. So one has to inquire why the brain is occupied. I am occupied with God, he is occupied with sex, she with her husband, while somebody else is occupied with power, position, politics, cleverness and so on. Why? Is it that when the brain is not occupied there is the fear of being nothing? Is it because occupation gives me a sense of living, and if I am not occupied I say that I am lost? Is that why we are occupied from morning till night? Or is it a habit, or is it a way for the brain to sharpen itself? This occupation is destroying the brain and making it mechanical. I do not know whether you are following. I have just now stated this. How do you listen to this? Now, does one see that one is occupied actually and, seeing that, remain with it? See what happens then.

When there is occupation, there is no space in the mind. I am the collection of all the experiences of mankind. And, if I knew how to read the book that is me, I would see that the story of all mankind is me. You see, we are so conditioned to this idea that we are all separate individuals, that we all have separate brains, and that the separate brains with their self-centred activity are going to be reborn over and over again. I question this whole concept that I am an individual—which does not mean that I am the collective, for there is a difference. I am not the collective. I am humanity.

From 'Fire In the Mind'
New Delhi, 5 November 1981

संपूर्ण मनुष्यता की कहानी मुझमें है

मन लगातार व्यस्त रहा करता है, है कि नहीं? अब, उस व्यस्तता के चलते आप सुन नहीं पाते, स्पष्टतापूर्वक देख नहीं पाते। तो इस बात की तहकीकात की ज़रूरत है कि दिमाग व्यस्त क्यों रहता है। मैं ईश्वर के बारे में सोच रहा हूँ, कोई सेक्स को लेकर व्यस्त है, कोई और है जो पति के विषय में सोचे जा रही है, तो कोई ताकत, पद-प्रतिष्ठा, राजनीति, चालाकियों वगैरह में जुटा हुआ है। ऐसा क्यों हो रहा है? क्या ऐसा है कि जब दिमाग व्यस्त नहीं होता, तो कुछ नहीं होने का डर घेर लेता है? या फिर, यह व्यस्तता मुझे ज़िंदा होने का एहसास देती है और यह व्यस्तता न रहे तो मेरा कहना है कि मैं तो भटक ही जाऊँगा। क्या इसी कारण से हम सुबह से शाम तक इस तरह व्यस्त रहा करते हैं, सोचते रहते हैं? या यह एक आदत बन गयी है; या फिर यह एक तरीका है दिमाग के अपने आप को पैना करते रहने का? यह व्यस्तता दिमाग को नष्ट किये दे रही है, उसे यांत्रिक, मशीनी बनाती जा रही है। पता नहीं आप यह समझ पा रहे हैं या नहीं? मैंने अभी-अभी यह सब कहा, आप इसे कैसे सुन रहे हैं? क्या हम देख पा रहे हैं कि हम वास्तव में व्यस्त हैं, और यह देखते हुए क्या हम इसके साथ बने रह सकते हैं? तब देखिए क्या होता है।

जब यह उधेड़बुन है, तो मन में कोई अवकाश, कोई खाली जगह नहीं होती। मनुष्यता के सारे-के-सारे अनुभवों का संग्रह मैं हूँ। और अगर मुझे मालूम हो कि इस किताब को कैसे पढ़ना है जो मैं हूँ, तो मुझे नज़र आ जाएगा कि संपूर्ण मनुष्यता की कहानी मुझमें है। ऐसा है, हम इस ख्याल से इतने संस्कारित हैं कि हम अलग-अलग व्यक्ति हैं, कि हम सब के अलग-अलग दिमाग हैं, और ये अलग-अलग दिमाग अपनी-अपनी स्वकेंद्रित गतिविधि सहित पुनः पुनः जन्म लेते रहेंगे। 'मैं एक अलहदा व्यक्ति हूँ'—इस पूरी अवधारणा पर मैं प्रश्न चिह्न लगा रहा हूँ; इसका मतलब यह भी नहीं कि मैं समूह हूँ, समुदाय हूँ; इसलिए कि एक अंतर है इसमें : मैं समूह नहीं, मनुष्यता हूँ।

अनुवाद : शक्ति

भय को, कल नौकरी न रहने के भय को, प्यार न पाने के भय को, तथा भय के दर्जनों प्रकारों को, बिना कोई नाम दिये, बिना द्रष्टा के देख सकते हैं? क्योंकि द्रष्टा ही दृश्य है, अवलोकन करने वाला ही अवलोकन का विषय है। मालूम नहीं आपको यह बात समझ आ रही है या नहीं? तो द्रष्टा ही, देखने वाला ही भय है, यह नहीं कि 'वह' किसी 'भय' का अवलोकन कर रहा है।

क्या आप बिना द्रष्टा के अवलोकन कर सकते हैं?—द्रष्टा, जो कि अतीत है। तब क्या भय रह जाता है? आप समझे? किसी चीज़ को एक द्रष्टा के तौर पर देखने की ऊर्जा तो हमारे पास है; मैं आपकी ओर देखता हूं और कहता हूं, ''आप ईसाई हैं, हिंदू हैं, बौद्ध हैं,'' या जो भी आप हैं, या मैं आपको यह कहते हुए देखता हूं, ''मैं आपको पसंद नहीं करता'', या ''मैं आपको पसंद करता हूं''। यदि आप उसी चीज़ में विश्वास करते हैं जिसमें मेरा भी विश्वास है, तो आप मेरे मित्र होते हैं; यदि मैं उन चीज़ों पर विश्वास नहीं करता जिन पर आप करते हैं, तो आप मेरे शत्रु होते हैं। तो क्या आप किसी को देख सकते हैं, विचार की, स्मृति की, आशा की इन तमाम गतिविधियों के बगैर—सिर्फ देखना? देखिए उस भय को जो समय रूपी मूल है, जड़ है? तब क्या भय का कोई भी वजूद रहता है? समझ रहे हैं? आप यह तभी पता लगा पाएंगे जब आप इसका परीक्षण करेंगे, इसे परखेंगे, जब आप इस पर काम करेंगे; इसे महज़ मनबहलाव का विषय बना लेने से कुछ पता नहीं चलने वाला।

फिर इच्छा का एक अन्य रूप भी होता है, जो न केवल भय को, बल्कि मज़े को भी रचता है। इच्छा मज़े का ही एक रूप है। मज़ा (प्लेझर) आह्लाद (जॉय) से भिन्न है। मज़े को आप पोषित कर सकते हैं, जैसा कि आधुनिक संसार कर रहा है, यौन रूप में, और नाना प्रकार के सांस्कृतिक बढ़ावे के रूप में—मज़ा, जबरदस्त मज़ा और मज़े की वह दौड़। और जहाँ मज़े के पीछे वह दौड़ होगी, वहाँ भय होना ही है, क्योंकि ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। आह्लाद को आप आमंत्रित नहीं कर

सकते; जब आह्लाद घटित होता है तो विचार इसे पकड़ लेता है और याद रखता है, और तब यह उस आह्लाद को हासिल करने में लग जाता है जो आपको एक साल पहले या कल प्राप्त हुआ था, और यही मज़ा बन जाता है। जब आह्लाद घटित होता है, एक खूबसूरत सूर्यास्त, कोई प्यारा-सा पेड़, या किसी झील की गहरी छाया देखने पर—तब वह आह्लाद स्मृति के रूप में मस्तिष्क में अंकित हो जाता है और उस स्मृति का पीछा करना ही मज़ा है।

तो भय है, मज़ा है, और आह्लाद है। क्या यह संभव है—यह कहीं अधिक जटिल समस्या है—क्या यह संभव है कि हम किसी सूर्यास्त को, किसी व्यक्ति के सौंदर्य को, किसी एकांत मैदान में एक पुरातन वृक्ष के प्यारे से आकार को देखें—उससे आह्लादित होने की, उसके सौंदर्य की अनुभूति तो होगी—देखें उसे, मस्तिष्क में उसे अंकित किये बिना, जो फिर स्मृति बन जाती है, और तब कल हम उसका पीछा करने लगते हैं। अर्थात, कुछ सुंदर देखा और बस, बात वहीं खत्म हो गयी; उसे ढोते नहीं रहें।

मनुष्य के अंदर एक और प्रवृत्ति काम करती है। भय और मज़े के अलावा, एक अभिवृत्ति दुख की भी है। क्या दुख का अंत संभव है? शारीरिक स्तर पर तो हम दुख का अंत चाहते हैं, इसीलिए हम दवाएं लेते हैं, और नाना प्रकार के योग के दाव-पेंच आदि करते हैं। किंतु हम दुख के प्रश्न का समाधान कभी कर नहीं पाये, मानवीय दुख का, किसी एक मनुष्य विशेष के दुख का नहीं, बल्कि समस्त मानवता के दुख का। आपका अपना दुख है, और संसार में अन्य करोड़ों-करोड़ों लोग भी दुख भोग रहे हैं, युद्ध के, भुखमरी के, क्रूरता के, हिंसा के कारण, बमों के ज़रिये। और क्या एक मनुष्य के तौर पर आपके भीतर इस दुख का अंत हो सकता है? क्या यह आपके भीतर समाप्त हो सकता है, क्योंकि आपकी चेतना ही तो संसार की चेतना है, हर अन्य मनुष्य की चेतना है? सतही तौर पर आपका बाह्य आचरण भिन्न हो सकता है, किंतु मूलभूत रूप से, गहराई में,

आपकी चेतना इस संसार के प्रत्येक अन्य मनुष्य की चेतना है। दुख, मज़ा, भय, महत्त्वाकांक्षा, यही सब तो आपकी चेतना है। अतः आप ही संसार हैं। और यदि आप भय से पूर्ण रूप से मुक्त हो जाते हैं, तो आप समस्त संसार की चेतना को प्रभावित करते हैं। क्या आप समझ रहे हैं कि यह किस कदर असाधारण रूप से महत्त्वपूर्ण है कि हम मनुष्य अपने आप को बदलें, एकदम गहरे में, क्योंकि ऐसा करना प्रत्येक अन्य मनुष्य की चेतना को प्रभावित करने वाला है? हिटलर ने, स्टालिन ने संसार की पूरी चेतना को प्रभावित किया, पादरी-पुरोहितों ने किसी के नाम के सहारे जो कुछ उपलब्ध किया उसने भी संसार को प्रभावित किया। अतः यदि आप मनुष्य के नाते स्वयं में एक आमूल परिवर्तन ले आते हैं और भय से मुक्त हो जाते हैं, तो स्वाभाविक है कि आप संसार की इस चेतना को भी प्रभावित करेंगे।

इसी प्रकार, जब दुख से मुक्ति होती है, करुणा का आगमन तभी हो पाता है, उससे पहले नहीं। आप इसके बारे में बात कर सकते हैं, पुस्तकें लिख सकते हैं, करुणा क्या है इस पर विचार-विमर्श कर सकते हैं, किंतु करुणा का आरंभ होता है, दुख का अंत हो जाने पर। मनुष्य का मन दुख को बरदाश्त करता आया है, अंतहीन दुख को; युद्धों में आपके बच्चे मारे जाते रहे हैं, और आगे भी भविष्य में होने वाले युद्धों से उत्पन्न और अधिक दुख-तकलीफ स्वीकार करने के लिए आपकी रज़ामंदी है। फिर शिक्षा के ज़रिये उपजती व्यथा है—आधुनिक शिक्षा जो तकनीकी ज्ञान अर्जित करवा देने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है—जो बहुत बड़े दुख का कारण बनती है। अतः करुणा, जो प्रेम है, उसका आगमन जीवन में तभी हो सकता है जब आप दुख की गहनता को तथा दुख के अंत को पूरी तरह समझ लें। तो क्या इस दुख का अंत हो सकता है, किसी दूसरे में नहीं, बल्कि आपमें? ईसाइयों ने दुख को एक पैरोडी, विद्रूपिका ही बना डाला है—इस शब्द के प्रयोग के लिए क्षमा करें—किंतु बात वास्तव में यही है। हिंदुओं ने इसे एक बौद्धिक मसला बना दिया है : जो

कुछ आपने पूर्वजन्म में किया है उसकी कीमत आप वर्तमान जीवन में चुका रहे हैं, और यदि आप इस समय सही बरताव करें तो भविष्य में आपका जीवन सुखी रहेगा! किंतु वे इस समय सही बरताव कदापि नहीं करते; इसका मतलब है कि वे इस विश्वास को बस ढोये जा रहे हैं जो निहायत बेमायने है। किंतु जो मनुष्य गंभीर है उसका सरोकार होगा करुणा से, इससे कि प्रेम का अर्थ क्या है, क्योंकि इसके बिना चाहे आप कुछ भी कर लें, दुनिया भर में गगनचुंबी भवन बनाते रहें, बेहतरीन आर्थिक स्थितियां व सामाजिक आचरण ले आएं, लेकिन बिना प्रेम के, बिना करुणा के जीवन बस एक रेगिस्तान बन कर रह जाता है।

अतः यह समझने के लिए कि करुणामय जीवन का अर्थ क्या है, आपको यह समझना ही होगा कि दुख क्या है। एक दुख होता है शारीरिक पीड़ा, शारीरिक व्याधि, शारीरिक दुर्घटना से होने वाला दुख जो आम तौर से मन को प्रभावित करता है, विकृत करता है—यदि आप एक समय तक शारीरिक पीड़ा से ग्रसित रहें, तो वह आपके मन को तोड़ने-मरोड़ने लगती है; और इस कदर जागरूक रहने के लिए कि शारीरिक पीड़ा मन को स्पर्श न कर पाए, मन को बहुत अधिक आंतरिक जागरूकता की ज़रूरत पड़ती है। और शारीरिक के अलावा भी, तमाम तरह के दुख हैं, अकेलेपन का दुख, वह दुख जब कोई आपको प्यार नहीं करता, कोई हमें प्यार करे इसकी लालसा बनी रहती है, और ऐसा हो भी जाए तो भी कुछ-न-कुछ असंतुष्टि बनी ही रहती है उससे, कारण कि हमने प्रेम को एक ऐसी चीज़ बना डाला है जो हमें संतुष्टि प्रदान करे, हम चाहते हैं कि प्रेम हमें तृप्त करे। फिर मृत्यु के कारण होने वाला दुख है; इस कारण भी दुख की मौजूदगी है हमारे जीवन में कि पूर्ण समग्रता का एक भी क्षण, संपूर्णता का ऐसा बोध जो आंशिक न हो, हम नहीं जी पाते, सदैव विखंडन में जीते हैं जो अंतर्विरोध है, संघर्ष है, उलझाव है, क्लेश है। और इन सब से भागने के लिए हम मंदिरों में, और नाना प्रकार के धार्मिक एवं अधार्मिक हर तरह के तमाशों में जाते

हैं, ड्रग का सेवन करते हैं, सामूहिक और व्यक्तिगत थेरेपी में भाग लेते हैं; आप जानते ही हैं इन सारी चालबाज़ियों को जो हम अपने व दूसरों के साथ भी किया करते हैं—यदि आप दूसरों के साथ चालबाज़ी करने में माहिर हों तो। अपार वेदना है जो एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को देता रहता है। हम पशुओं को भी वेदना देते हैं, उन्हें मारते हैं, खा जाते हैं, हमने एक के बाद एक उनकी कई प्रजातियों को नष्ट कर दिया है, क्योंकि हमारा प्रेम विखंडित है, टुकड़ों में बँटा है। हम ईश्वर से प्रेम करते हैं, और इंसानों की हत्या करते रहते हैं।

क्या इसका अंत हो सकता है? क्या दुख का पूरी तरह से अंत हो सकता है, ताकि संपूर्ण एवं समग्र करुणा अस्तित्व में आ सके? क्योंकि दुखभोग के लिए अंग्रेजी में जो 'सफरिंग' शब्द है, उसका अर्थ, उसका मूल अर्थ है पैशन, उत्कट आवेग—ईसाई इसे जिस अर्थ में लेते हैं वह नहीं, वासना भी नहीं, वह तो एकदम घटिया-सा, मामूली मामला है, बल्कि हम बात कर रहे हैं करुणा की, जिसका अर्थ है सभी के प्रति सहसंवेदना की तीव्रता, हर चीज़ से सरोकार; और इसका आगमन तभी हो पाता है, जब दुख से पूरी तरह मुक्ति हो।

देखिए, यह बड़ी जटिल समस्या है, भय और मज़े की तरह, ये सब आपस में संबंधित हैं। क्या व्यक्ति इसकी गहराई में जा सकता है, देख सकता है कि क्या मन एवं मस्तिष्क के लिए कभी भी हर प्रकार के मानसिक, आंतरिक दुख से पूरी तरह मुक्त होना संभव है। यदि हम इसे समझे नहीं और इससे मुक्त नहीं हुए तो हम दूसरों के दुख का कारण बनते रहेंगे, जैसा कि हम करते चले आये हैं, हालांकि आप ईश्वर पर विश्वास करते हैं, क्राइस्ट में, बुद्ध में, विविध प्रकार की आस्थाओं में आपका विश्वास है—तो भी आप पीढ़ी-दर-पीढ़ी मनुष्य को मारते चले आये हैं। समझ रहे हैं आप कि हम क्या कर रहे हैं, हमारे राजनीतिज्ञ भारत में और यहां कर क्या रहे हैं? ऐसा क्यों है कि मानवजाति जो स्वयं को अद्‌भुत रूप से जीवंत, बुद्धिमान मानती

है, क्यों उसने अपने आप को दुखग्रस्त होने दिया है? जब ईर्ष्या होती है तब दुख से गुज़रना होता है; ईर्ष्या घृणा का ही एक रूप है। और ईर्ष्या हमारी बुनावट, हमारी प्रकृति का हिस्सा है, जो है अपनी तुलना किसी दूसरे से करना। क्या आप बिना तुलना किये जी सकते हैं? हम सोचते हैं कि बिना तुलना के हम विकसित नहीं होंगे, आगे नहीं बढ़ेंगे, कुछ बन नहीं पाएंगे। किंतु कभी आपने कोशिश की है—सचमुच, वास्तव में कोशिश की है—बिना किसी और से तुलना किये जीवन जीने की? आपने संतों की जीवनियां पढ़ रखी हैं और यदि आपका रुझान इस ओर है, तो ज्यों-ज्यों आप वृद्धावस्था की ओर बढ़ते हैं आप उनकी तरह बनना चाहते हैं; तब नहीं जब आप युवा होते हैं, उस समय तो आप इन सब बातों को बुढ़िया-पुराण, नितांत अव्यावहारिक मानते हैं। पर जैसे-जैसे आप कब्र के नज़दीक पहुंचने लगते हैं, आप मानो जाग उठते हैं।

विविध प्रकार के दुखभोग हैं। क्या आप दुख को देख सकते हैं, बिना इससे पलायन की कोशिश किये क्या आप इसका अवलोकन कर सकते हैं?—दृढ़तापूर्वक, बस उस भाव के साथ बने रहना। जब मेरी पत्नी—मैं शादीशुदा नहीं हूं—मुझे छोड़कर चली जाती है, या किसी दूसरे की ओर देखती है—कानूनन वह मेरी है और मैं उसे जकड़े रखता हूं—और जब वह मुझसे पल्ला छुड़ाकर भागती है तो मुझे ईर्ष्या होती है; क्योंकि मैं स्वयं को उसका स्वामी मानता हूं और इस स्वामित्व में मैं संतुष्ट, सुरक्षित महसूस करता हूं। तो उस ईर्ष्या को, उस जलन को, उस घृणा को क्या आप विचार की किसी भी हलचल के बिना देख सकते हैं, और उसके साथ बने रह सकते हैं? जो मैं कह रहा हूं क्या आप समझ पा रहे हैं? ईर्ष्या एक प्रतिक्रिया है, एक प्रतिक्रिया जिसे स्मृति के ज़रिये 'ईर्ष्या' नाम दिया गया है, और मुझे उससे दूर भागने, उसे तर्कसंगत ठहराने, या क्रोध, घृणा और इस तरह के तमाम लक्षणों सहित उसमें मुब्तिला होने के लिए प्रशिक्षित किया गया है, किंतु इस सब में से कुछ भी किये बिना, क्या मेरा मन

बिना किसी हलचल के, दृढ़ता से इसके साथ रह सकता है? आप समझ रहे हैं जो मैं कह रहा हूं? ऐसा करके देखिए और आप खुद जान लेंगे कि तब क्या होता है।

इसी प्रकार जब आप दुख से गुज़रें, मानसिक रूप से, तो उसके साथ पूरी तरह बने रहें, बिना विचार की किसी भी हलचल के। तब आप देखेंगे कि उस दुख-वेदना से वह अद्‌भुत चीज़ पैदा होती है जिसे पैशन, उत्कटता कहते हैं। और यदि आपके पास इस प्रकार की उत्कटता नहीं है तो आप सर्जनात्मक नहीं हो सकते। उस दुख-वेदना से करुणा का आविर्भाव होता है। और यह ऊर्जा विचार की यांत्रिक ऊर्जा से पूर्णतया भिन्न होती है।

'ट्रुथ एंड एक्चुएलिटी' से
अनुवाद : उमेश मोहन सकलानी

''स्मृति को जाने दें''

कुछ दिनों बाद एक चर्चा के दौरान कृष्णमूर्ति ने स्मृति को हमारी 'मैं' रूपी चेतना बतलाया; स्मृति जो वर्तमान की समझ को विकृत करती है, उसमें बाधा डालती है। उन्होंने तथ्यात्मक स्मृति को मनोवैज्ञानिक स्मृति से अलग बताया—'मैं' ऐसा बनूंगा, 'मुझे' ऐसा होना चाहिए। फिर उन्होंने पूछा, 'क्या मनोवैज्ञानिक स्मृति के बिना जीना संभव है?' चर्चा धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थी, और उसमें मेरी रुचि जाती रही। मेरा मन किसी इच्छा का पीछा करने लगा। मैं जितना चर्चा के विषय पर ध्यान देने का प्रयास करती, मेरा मन उतना ही बेचैन होता जाता। मैं इतनी तंग आ गयी कि मैंने अपने मन को रोकना छोड़ दिया, उसे भटकने दिया। जल्द ही मुझे एहसास हुआ कि मन शांत हो रहा था, स्थिर हो रहा था। और सुबह से, पहली बार मैंने सुना कि वहां क्या कहा जा रहा था। चर्चा में अब एल्फिन्स्टन कॉलेज के प्रोफेसर छुब बोल रहे थे, और मैं सुन रही थी। क्या स्मृति को त्याग देना संभव है? मैंने स्वयं से यह प्रश्न किया। मैं 'मैं' के सिद्धांत से मुक्त होना नहीं चाहती थी। आखिर कितने ध्यान और लगन से मैंने इसे खड़ा किया है; इससे मुक्त होने की ज़रूरत ही क्या है? यह छूट गया तो मैं कहां जाऊँगी, क्या करूंगी?

तभी एक उत्सुकता मन में पैदा हुई, यह पता लगाने की कि क्या स्मृति को नकारा जा सकता है। और तत्क्षण सब कुछ स्पष्ट हो गया। मैं मन को, उसकी गति को ध्यानपूर्वक देखने लगी। कृष्णमूर्ति कह रहे थे, ''आप क्या कर सकते हैं, सर? आपके सामने एक कोरी दीवार है। आप यूं ही हाथ खड़े तो नहीं कर सकते, आपको कुछ-न-कुछ तो करना ही होगा।'' उसी क्षण मेरे

मुंह से निकला : ''स्मृति को जाने दें।'' और अचानक मेरा मन-मस्तिष्क आईने की तरह साफ़ हो गया। कृष्णमूर्ति ने सीधे मेरी ओर देखा। मन की स्पष्टता और गहरी हो गई। ''हां, आगे कहिए'', उन्होंने कहा, ''जब आप स्मृति को जाने देते हैं, तब आपके मन की अवस्था क्या होती है?'' ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वहां उपस्थित पचास लोग ग़ायब हो गए हों, और सिर्फ़ मैं और कृष्णमूर्ति वहां मौजूद हों। ''मेरा मन निश्चल होता है'', मैंने कहा। और तभी मैंने महसूस किया—एक गुणधर्म को जो इतना प्रबल था, निराग्रही, स्फूर्तिमान और जीवंत। वह मुस्कुराए और बोले, ''छोड़ दीजिए, थोड़ा धीमे, रौंदना नहीं है उसे।'' वहां मौजूद अन्य लोगों ने बीच में कुछ कहना चाहा ताकि वे उसे समझ सकें जो मैं महसूस कर रही थी, किंतु कृष्णमूर्ति ने कहा, ''उसे और मत छेड़िए, रहने दीजिए, यह इतना नाज़ुक है, विश्लेषण करके उसे बिखेरिए मत।'' गोष्ठी समाप्त होने पर वहां से जाते समय कृष्णमूर्ति मेरे साथ दरवाज़े तक आए और मुझसे बोले, ''आप मुझसे आकर ज़रूर मिलें, हमें इस विषय पर बात करनी चाहिए।'' मुझे ऐसा लग रहा था मानो मेरा मन धुल कर साफ़ हो गया हो। चूंकि उस संवाद के दौरान उत्पन्न तीव्रता व स्पष्टता की अनुभूति प्रत्यक्ष होती गयी, हमें उत्सुकता थी कि चर्चा जारी रहे और जिस भी दिन कोई सार्वजनिक वार्ता आयोजित नहीं की गयी होती, हम कृष्णमूर्ति से भेंट करते और संवाद जारी रहता।

इन संवादों में उठने वाले अधिकतर प्रश्नों का संबंध प्रथमतः एक अव्यवस्थित, अराजक समाज में नीतिसम्मत आचरण की अविलंब आवश्यकता से था। बाद में कहीं जाकर मनुष्य की मूलभूत समस्याएं—ईर्ष्या, महत्त्वाकांक्षा, भय, दुःख, मृत्यु, समय, और कुछ बनने की तीव्र लालसा, कुछ हासिल न कर पाने की यंत्रणा—उभर कर सामने आईं और उन पर बात हुई। बाद के वर्षों में कृष्णमूर्ति ने लिखा, ''जोतने और बोने के पश्चात ज़मीन

को कतई न छेड़ना, ठहर जाना ही सृजन को जन्म देना है।'' जैसे-जैसे साल-दर-साल चर्चाएं होती गईं, उनमें कई प्रश्न उठते रहे, कई विश्लेषणात्मक अन्वेषण हुए; सुनिश्चितता के रवैये से मुक्त, झिझकते हुए, खोजबीन करते हुए। हम बिना तुरत-फुरत समाधान की अपेक्षा लिए प्रश्न करते; बल्कि हम कदम-दर-कदम विचार की प्रक्रिया पर गौर करते, उसकी तहों को खुलते देखते—गहरे पैठना और फिर सतह से बाहर आना; हर गतिविधि, अवधान को, ध्यान को मन के गुप्त खोहों में और-और गहरे ले जाती। एक सूक्ष्म, निःशब्द संवाद घटित हो रहा था; निषेध की गतिशीलता विचार की विधिपरक गतिविधि से मिलते हुए स्पष्ट हो रही थी। तथ्य को, 'जो है' को, 'जो है' में निहित ऊर्जा को निर्मुक्त होते 'देखना' हो रहा था जो कि 'जो है' का उत्परिवर्तन है, म्यूटेशन है। फिर इसे भी इसकी यथार्थता के परीक्षण हेतु अलग-अलग पहलुओं से देखा-समझा जाता, द्वैत और अद्वैत की प्रकृति को सीधी-सरल भाषा में उद्घाटित किया जाता। प्रश्न करने, खोजबीन करने की उस अवस्था में—एक ऐसी अवस्था जिसमें प्रश्नकर्ता, अनुभवकर्ता का कोई अस्तित्व नहीं रह जाता—'सत्य' की झलक कौंध जाती। यह संपूर्ण निर्विचार की, द्वैत के अंत की अवस्था थी।

-पुपुल जयकर कृत 'कृष्णमूर्ति अ बायोग्राफी' से
अनुवाद : भूमिका

अहल्या दी! अलविदा और नमस्कार

प्रिय अहल्या दी,

आपको गए हुए आज चालीस दिन हो चुके हैं। उत्तरकाशी रिट्रीट में चीड़ व जकारंदा के पेड़ों के तले बैठे आपके बारे में कुछ लिखना... असमंजस में हूँ कि कहाँ से शुरू करूँ। जो भी लिखूं, सबसे पहले आपको अर्पित—भरे दिल से—जानते हुए कि हमेशा की तरह आपकी शुभकामनाएं साथ हैं—और आशीर्वाद का हाथ भी। उत्तरकाशी रिट्रीट जैसी जगह में जैसे आपकी आत्मा बसी है—इस जैसे कुदरत के करीब स्थानों को बनाये रखने में आपका बेहद योगदान जो रहा है।

आपकी,
दीप्ति

अहल्या चारी के बारे में

नब्बे वर्ष की आयु पार करने पर वह बोलीं—अब कुछ ही समय बाकी है मेरे पास किंतु करने को बहुत कुछ है! बाकी लगभग दो वर्षों में आपने हमेशा की तरह कई महत्त्वपूर्ण ज़िम्मेदारियां निभाईं। कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ऑफ़ इंडिया के चेन्नई स्थित हेडक्वार्टर, वसंत विहार, में रहते हुए आपने उनके कई अप्रकाशित वक्तव्यों का संपादन किया, संवादों में भाग लिया, स्कूलों को तरह-तरह की सलाह दी, कई पुस्तक-पुस्तिकाओं को संयोजित किया, और जर्नल ऑफ़ द कृष्णमूर्ति स्कूल्ज़ के संपादन की बागडोर सँभाली। इसके अलावा आप ढेर सारे लोगों से मिलती रहीं, मार्गदर्शन किया, और दीन-दुनिया के हालात की ख़बर रखना न भूलीं।

आपसे मिलते रहना मेरा सौभाग्य रहा। बचपन में हमारे आपसी संबंध की जड़ें हैं, जब दिल्ली विश्वविद्यालय में आप मेरे माँ-पिताजी की सहकर्मी, और मित्र थीं। कृष्णमूर्ति स्कूलों और कृष्णमूर्ति की शिक्षाओं में मेरी रुचि गहरी होती गयी थी, तो अनेक बार अहल्या दी के साथ सूक्ष्म से सूक्ष्म विषयों पर चर्चा

हुई। इस वर्ष मार्च के एक सप्ताह—19 से 25 तारीख—लगातार आपके साथ रही, हालांकि आपकी तबियत बहुत ठीक नहीं थी, तब भी हमने खूब बातचीत की, पढ़ा लिखा व चर्चा का आनंद लिया, हँसते रहे, तो कभी बेहद गंभीर मुद्दों को उठाया। नर्स डाक्टर आये-गये, अरुणा-रत्ना आपकी देखभाल करते रहे, अनेक शुभचिंतक हालचाल पूछ रहे थे, और आप सूफियों व कबीर जी के गीत, व कृष्णमूर्ति की 'दिस लाइट इन वनसेल्फ' में लीन हो जातीं। 'द स्कूल' (चेन्नई) की अध्यापिकाओं के साथ वार्तालाप किया—शिक्षा व स्वतंत्रता विषय पर; रोज़ खबरें सुनती थीं, नए लेख भी पढ़ रही थीं—श्रीलंका-तमिलनाडु के संबंधों पर, कुंभ मेले में श्रमिक वर्ग के हालात पर, शिक्षा-शिक्षण के अनेक मामलों पर।

एक दिन बोलीं, ''जब के.एफ.आई. से पूर्णकालीन जुड़ने का मैंने फैसला ले लिया, तब एन.सी.ई.आर.टी. में डायरेक्टर बनने का प्रस्ताव था मेरे सामने। फिर यूनेस्को का न्योता आया—पाठ्यक्रम व शिक्षक प्रशिक्षण में एक अंतर्राष्ट्रीय पद सँभालने का। कृष्णजी को मालूम चल गया तो उन्होंने मुझे पूछा, 'यूनेस्को का पद सँभालने का मन नहीं किया?' मैंने सच-सच जवाब दिया, 'नहीं। आपको वादा जो कर चुकी थी!'

''मुझे एक पल देखते रहे, फिर मेरे सर पर हाथ रखकर बोले, 'संरक्षित रहोगी (यू विल बी प्रोटेक्टेड)'। और हमेशा, मेरे सर पर छत्रछाया बनी रही! जब भी कोई समस्या उठी अपने आप उसका समाधान भी होता गया, अपने आप!''

लगभग पचास वर्ष की आयु में शिक्षा जगत में ख्याति प्राप्त की; बर्मा से शरणार्थी परिवार की इस लड़की ने बाईस वर्ष की उम्र में वाराणसी के वसंत कॉलेज में शिक्षण कार्य आरंभ कर दिया था। अंत तक उन्हें राजघाट से अत्यंत लगाव था, एक खास आस्था थी। सत्तर के दशक में वह राजघाट सेंटर की निदेशक रहीं। फिर सभी स्कूलों की देखरेख की—प्रत्येक स्कूल की समस्याओं पर चिंतन और सहयोग।

आजीवन उनके सरोकार बने रहे। 'द स्कूल' के लिए नयी जगह खोजने की प्रक्रिया में वह जुड़ी हुई थीं। ऋषि वैली द्वारा अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के साथ शिक्षक प्रशिक्षण कोर्स बनाने की प्रक्रिया में वह गहरी रुचि ले रही थीं, और अपनी सलाह भी दे रही थीं।

आखिर के उन दिनों में भी वह कृष्णमूर्ति के विचारों के अनोखे आयामों पर अपनी समझ और पैनी करती गयीं, संवाद व मनन-चिंतन द्वारा। बहुत कुछ सिखाती गयीं—काफी कुछ आगे लिखने-सोचने के लिए छोड़ गयी हैं।

एक दिन, एक याद बाँटी—कृष्णजी कहा करते थे कि किसी जगह अपनी जड़ें मत फैलने दो। एक स्कूल से दूसरे में भेज दिया करते थे। इंसान एक जगह रम जाता है, वहाँ से हिलना नहीं चाहता—जैसे ऋषि वैली में हैं तो वहीं रहेंगे, राजघाट नहीं जाना चाहते। कृष्णजी कहते थे, एक जगह जड़ नहीं डालो, पर साथ में यह भी कहते थे—कि जिस जगह हो, उसे अपनी कब्र बना दो! यानी—अपना सब कुछ दे दो, न्योछावर कर दो।

...और अहल्या दी वहीं, वसंत विहार में रहीं, अस्पताल जाने के प्रस्ताव को नकारते हुए। एक दिन मैंने सुझाव दिया कि पहिया-कुर्सी का इंतजाम करें जिससे सामने के बरामदे पर बैठकर वह बगीचे का लुत्फ उठा पाएं। एक पल सोचा, फिर मना कर दिया—यह कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ऑफ़ इंडिया है, कोई बुढ़ापे में बीमार लोगों का अस्पताल नहीं—कहकर ठहाका मारा!

इस ज़िंदादिल सर्वप्रिय इंसान ने 30 मार्च 2013 की सुबह नाश्ता किया, अपने साथ रहनेवालों से मिलीं भी। फिर कुछ ही क्षणों की बेहोशी (कोमा) के बाद अपनी देह त्याग दी। यूं ही—अत्यंत सहजता के साथ—जिस सहज तरीके से आप जीती थीं। संभवतः आप समझ चुकी थीं कि मरण जीवन के साथ है, अनिवार्य है—और उससे कुछ अलग नहीं है।

अनेक दिलों में आज भी आपके स्नेह, समझ और संवेदनशीलता की गहरी छाप मौजूद है, और आपके कई सारे सुंदर लेख हमारे पास बने रहेंगे।

–दीप्ति प्रिया मेहरोत्रा

सर्वांगीण शिक्षा

राजघाट परिसर की नैसर्गिक शांति की पृष्ठभूमि में 'शिक्षा में समग्रता का आयाम' विषय को आधार लेकर अप्रैल, 2013 में एक चार-दिवसीय अध्ययन-अवकाश (रिट्रीट) का आयोजन किया गया। बरसों पहले इसी परिसर में, कृष्णमूर्ति ने शिक्षा से जुड़े मित्रों के समक्ष एक प्रश्न रखा था : ''क्या शिक्षा का कार्य हर प्रकार के भय से मुक्त कराने में विद्यार्थियों की सहायता करना नहीं है?'' आज की शिक्षा को मुख्यतः आजीविका के उपकरण के रूप में लिया जाता है, लेकिन जीवन से जुड़े ऐसे प्रश्नों का विमर्श उसमें न के बराबर है, इसलिए हम आंशिक तौर पर ही शिक्षा ले-दे पाते हैं। जीवन जीने की कला के रूप में शिक्षा क्या है, उससे जुड़े प्रश्न क्या हैं, इस पर कृष्णमूर्ति की शिक्षाओं के आलोक में इस अध्ययन-अवकाश के दौरान सघन मंथन हुआ। अधिकतर सहभागी शिक्षा के क्षेत्र से आये युवा थे, जिससे इस रिट्रीट में एक अलग ही तरह की ऊर्जा नज़र आयी।

कॉपीराइट सूचना

जे. कृष्णमूर्ति के उद्धरण अंतर्राष्ट्रीय कॉपीराइट नियम के अंतर्गत संरक्षित हैं तथा सर्वाधिकारी की लिखित पूर्वानुमति के बिना किसी भी रूप में पुनः प्रस्तुत नहीं किये जा सकते हैं। सन् 1968 के पूर्व की कृष्णमूर्ति की रचनाओं का कॉपीराइट कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ऑफ अमेरिका, ओहाय, कैलीफोर्निया का है। सन् 1968 के बाद की रचनाओं का कॉपीराइट कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ट्रस्ट, ब्रॉकवुड पार्क, इंग्लैंड का है।

आगामी प्रकाशन

जे. कृष्णमूर्ति : एक जीवनी

मेरी लट्यन्ज़ कृत कृष्णमूर्ति की जीवनी का प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद।

नये प्रकाशन

आज़ादी की खोज

'ऑन फ्रीडम' का यह सुरुचिपूर्ण हिन्दी अनुवाद राजपाल एंड सन्ज़ द्वारा सद्यः प्रकाशित हुआ है।

कतिपय अन्य महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

संस्कृति का प्रश्न

'थिंक ऑन दीज़ थिंग्ज़' का संशोधित हिंदी संस्करण।

सुखी वही जो कुछ नहीं

कृष्णमूर्ति द्वारा एक युवा मित्र के नाम लिखे गये पत्रों से उद्धृत अंतर्दृष्टियों का यह संचयन दैनिक जीवन से जुड़े प्रश्नों पर प्रकाश डालता है।

प्रथम और अंतिम मुक्ति (द्विभाषी संस्करण)

एक संग्रहणीय पुस्तक। बाँये पृष्ठों पर मूल अंग्रेजी पाठ तथा दाँये पृष्ठों पर उनका हिन्दी अनुवाद दिया गया है। कृष्णमूर्ति की शिक्षाओं के अध्ययन में एक भिन्न आयाम।

वर्ष में तीन बार प्रकाशित निःशुल्क न्यूज़-लैटर

स्वयं से संवाद

मंगाने के लिए अपना पता भेजें।

सूचनाओं तथा संपूर्ण पुस्तक सूची हेतु संपर्क करें-

कृष्णमूर्ति स्टडी सेंटर
कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया, राजघाट फोर्ट, वाराणसी-221001
ईमेल : kcentrevns@gmail.com फोन : 0542-2441289

'कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया' के लिए प्रकाशक, मुद्रक प्रो. पी. कृष्णा द्वारा सत्तनाम प्रिंटिंग प्रेस, एस-1/208 के-1, नयी बस्ती, पांडेयपुर, वाराणसी 221 002 से मुद्रित एवं कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया, राजघाट फोर्ट, वाराणसी 221 001 (उ.प्र.) से प्रकाशित।

संपादक : विजय छाबड़ा